अंतरा-शब्दशक्ति

नैनन नीर न धर

काव्य संग्रह

विजयलक्ष्मी जांगिड़ ''विजया''

नैनन नीर न धर

(काव्य संग्रह)

विजय लक्ष्मी जांगिड़ 'विजया'

अन्तरा-शब्दशक्ति प्रकाशन

वारासिवनी, मध्यप्रदेश

ISBN- 978-93-86666-21-5

अन्तरा-शब्दशक्ति प्रकाशन

मुख्य कार्यालय - १५ नेहरु चौक वारासिवनी, जिला बालाघाट (म.प्र) ४८१३३१

शाखा- एस-२०७, नवीन भवन, इंदौर प्रेस क्लब परिसर, इंदौर (म.प्र.) ४५२००१

दूरभाष- (कार्या.) ०७६३३-२५३१५९ (मो) ९४२४७६५२५९

अणुडाक- antrashabdshkti@gmail.com

अंतरताना- www.antrashabdshakti.com

प्रथम संस्करण २०१८- विजय लक्ष्मी जांगिड़ 'विजया'

मूल्य - ५५.०० रुपये

आवरण चित्र- संदीप सोनी, वारासिवनी

मुद्रक- शैलू कम्प्यूटर्स, वारासिवनी

Nainan Neer n dhar by Vijay Laxmi Jangid 'VIjaya'

वैधानिक चेतावनी - इस पुस्तक का सर्वाधिकार सुरक्षित है। लेखक की लिखित अनुमति के बिना इसके किसी भी अंश को फोटोकापी एवं रिकार्डिंग सहित इलेक्ट्रोनिक अथवा मशीनी किसी भी माध्यम से अथवा संग्रहण और पुनर्प्रयोग की प्रणाली द्वारा किसी भी रूप में पुनरुत्पादित अथवा संचारित प्रसारित नहीं किया जा सकता है। प्रस्तुत पुस्तक की समस्त रचनाएँ लेखक द्वारा अन्तरा शब्द शक्ति प्रकाशन को प्रेषित की गई है अतः प्रत्येक रचना की मौलिकता के किसी भी दावे हेतु लेखक जिम्मेदार है। प्रस्तुत पुस्तक के घटनाक्रम पात्र, भाषाशैली एवं स्थान सभी लेखक की कल्पना है। किसी भी प्रकार के वाद-विवाद के लिए प्रकाशक का सहमत होना अनिवार्य नहीं है।

"निर्झरणी भावों की ...."

"माटी का खिलौना मानव
इतनी सी है जात।
सजता बाजारों में
भूले वो अपनी औकात।"

सच जीवन कहाँ से कहाँ तक बह निकलेगा ये कौन जानता है? पर जीवन जीने का मोह इंसान को दिनरात दौड़ाता है। इस सच से अनजान की उसका गन्तव्य तो एक दिन फिर से माटी हो जाना है। माटी का जीव फिर वही बन जायेगा और जो अलौकिक तत्व हमारे भीतर है वह उस परम ज्योति में विलीन होगी जिससे सारी सृष्टि चलायमान है। फिर भी साँसों का मोह कम नही, रिश्ते नाते निभाने की उत्कंठा निर्झर सी बहती है और अपने पराये का दुख दर्द उहापोह पैदा करता है। यही संसार का सच भी है और सांसारिकता के अनिवार्य लक्षण भी।

इसी सांसारिकता से जन्म लेती है कभी महत्वाकाग्क्षा तो कभी स्वार्थ लोलुपता इसी से फलित होता है महाशोक। जिससे पुष्पित होती है निराशा। निराशा जो कभी नयनो में नीर बन कर हिमबिन्दु सी पिघलती है मानो सम्वेदना रुदन कर रही हो। उस भावुक क्षण में कहीं से कौंध उठती है हल्की सी आशा की लौ जो मद्धम मद्धम उनीदी सी होले से मन में हिलोरे लेती है और मन कह उठता है।

रे मन !
राम रची जो होय
छोड़ ,छोटी सी भी निराशा
तेरी नाव डुबोया।

सच तब जीवन की चाह बलवती हो उठती है और नैराश्य कहीं गहन दब जाता है । जीवन दायनी इसी आशा की अँजुरी में स्मृतियां सुख से किलोल करती है और मन सराबोर रहता है जीवनाशा से।

कविताओं के संकलन को जब एक पुस्तकीय रूप दिया जाने की संकल्पना जागी तो यही अभिलाषा मन में घुमड़ रही थी कि कहीं हताश निराश मन को पुनः झकझोर कर उद्वेलित कर जीवन जीने की ओर प्रेरित किया जा सके।

'आँसू' कविता में मगर के आँसू जैसे प्रयोग के द्वारा मनोवैज्ञानिक स्तिथि को चित्रित करने का प्रयास है वहीं मन 'व 'संयोग' कविता भी मानव को चिंतन की ओर प्रेरित करती दिखती है।

कविता सिर्फ मनोरंजन नही साहित्यिक सरोकारों के उद्देश्यों को भी वहन करती है और इसी को इंगित करती है।

संकलन की कविता 'नही कन्या भ्रूण गिराउंगी', नारी मन की विभिन्न मनोदशाओं के पटों को खोलती हुई 'मनु', युग बोध, 'वो जनरल बोगी', आजादी के दीवानों में जैसी कविताओं में सहजता से अपने मन की बात कहने की कोशिश की है। एक संकल्प लिए उद्घाटित हुई 'रक्तबीज' कविता क्रांति का स्वर मुखरित करती सी लगती है।

अस्तु "नैनन नीर न धर" में हर और एक नई भोर की कामना की गई है। अब ये सुधिजन, पाठकवृन्द तय करे कि कहाँ तक सफलता मिल पाई है।

बहुत आभारी हूँ अन्तरा-शब्दशक्ति प्रकाशन की जिन्होंने पुस्तक को सुंदर कलेवर में प्रकाशित किया।

फिर नई अभिलाषा के साथ

विजय लक्ष्मी जांगिड़ 'विजया'

जयपुर, राजस्थान

अनुक्रमणिका

1.	नैनन नीर न धर	7
2.	आँसू	8
3.	बिजली गुल	10
4.	मैं चुप हो जाऊंगी	11
5.	तुम्हारा मन	12
6.	मनु	14
7.	मृत्यु भोज	15
8.	शिव बन जाओ तुम	16
9.	छज्जे	17
10.	गुड़िया के बाल	18
11.	मैं क्यों न बदली	20
12.	आज़ादी के दीवानों में	21
13.	एक मुलाकात हमदम के साथ	22
14.	ओ मोरे कन्हैया	23

15. अतिक्रमण 24

16. प्रियदर्शी 26

17. संयोग? 27

18. रक्तबीज 28

19. वो जनरल बोगी 29

20. नही कन्या भ्रूण गिराउंगी 30

21. बातें वो पहले सी 31

22. कुछ साँसों का हिसाब 32

नैनन नीर न धर

रे मन !
राम रची जो होय।

थोडी तो मन, धर ले आशा
छोड़, छोटी सी भी निराशा
तेरी नैया डुबोय
रे मन!
राम रची जो होय।

सृष्टि का पत्ता-पत्ता भी
अपनी नियति संजोय
रे मन !
राम रची जो होय।

नैनन नीर न धर, ओ मनवा!
चाहे जग अंधियारा बोये
डूबत को तिनके का सहारा
तू क्यों धीरज खोये ।
रे मन !
राम रची जो होय।

देख जगत में अपनी करनी
आप ही मानव ढोये।
रोते रोते रैना बीती
जाग सवेरा होय।
रे मन !
राम रची जो होय।

लाख करे रजनी भी जोरी
सूरज न रोके कोई।
तेरे भाग्य का तुझे मिलेगा
करम न छीने कोई।
रे मन !
राम रची जो होय।

आँसू

आँसुओ का बहना
जैसे आँखों का कुछ कहना मगर...
देर तक सिर्फ चुप रहना
किसी फोड़े का भीतर ही भीतर पनपना।
और कृत्रिमता इनकी मगर के आँसू
मगर
क्या मगर के आँसू हमेंशा
दिखावटी?
हूक उठे और बहे नही तो...
शायद मर्यादा रोके।
फूट फूट कर झरे
मन की परतें खोले
लेकिन क्या...?
हर कोई समझे ?
पाकर स्पर्श अपनेपन का
चुपचाप लुढ़कना कोरो से
और कभी अभिलाषा में टपकना निरन्तर
किन्तु
क्या ये हमेंशा रुलाते ही हैं?
कदाचित
मधुर स्मृति में ये मुस्काते भी हैं।
आँसू कभीकभार
जब चिरकाल तक

छुपे से रहते हैं सिर्फ कोनो
तक आकर ही लौट जाते हैं
शायद... जम जाते हैं।
और ये जमें हुए आँसू
बड़ी भयावह आँधी उठाते हैं।
सुना है कभी कभी
ये प्यारे साथी !
जब बरसो यू ही बहते हैं अतृप्त
तो सूख भी जाते हैं।
कभी कल्पना की भाषा
कभी प्रिय की आँख के मोती
अनमोल कहाते हैं।
बहते हैं, झरते हैं, टपकते हैं
लुढ़कते हैं सूखते हैं, जमते भी हैं आँसू।
पर क्या कभी हम
किसी की आँखों में इन्हें पढ़ पाते हैं?
कभी विवशता में बहते हैं जब
किसी की आँखों में
हम कितनी बार अपने हाथ
इन्हें पोंछने के लिए उठाते हैं?
सच ! उपहास के नही
अंतर्मन के कपाट हैं ये
हर किसी के सामने नही खुलते।

बिजली गुल

आज
बरसो बाद
आँगन चहका
बूढ़ी आंखों से
झर झर सावन
बहका
खिल उठा चौक का पीपल
अपनेपन की धूम थी
कहकहे गूंज रहे थे
खिड़कियों में
घुट रही थी सत्तू,ठंडाई
चौबारे में चने चबाने की
लूम थी।
गुड़िया खेली गई
पौड़ी में
बरसो बाद बड़की दीदी ने
जबरन चुपड़ा तेल ,गुंथी दो चोटियां
मेरी
छुटके को मल-मल नहलाया
काजल का टीका खूब सजाया
गलियों में गेंद बल्ले
की झूम थी।
हटी निगाहे
टी वी
मोबाइल से
मिलकर बैठी
नन्द भोजाई
बातें हुईं ,मैल धुले
माँ के हाथ की
छाछ राबड़ी
कड़ी ढोकले और केर सांगरी
खाई मनभर
मायके में
सब सखियों की
महफ़िल जमी
खूब थी

क्योंकि
आज शहर में
बिजली गुल थी ।

मैं चुप हो जाऊंगी

अगर तुम चाहो तो
मैं .....
चुप हो जाउंगी
हमेंशा के लिए
मगर
मेरी ये चुप्पी
एक प्रश्न होगा
तुम पर
की क्या हम साथी हैं?
क्योंकि साथ
हमेंशा साथ ही होता है
कम ज्यादा
या आगे पीछे नही
नापतौल तनिक नही
अस्तु
तुलना भी रत्ती भर नही
और अपेक्षा की
आंशिक .....
गुंजाइश नही।
हाँ .....
साथ
मांगे से नही मिलता
जानती हूं।
मगर ये भी सुना है मैंने
की समर्पण हो अगर मीरा का
तो कृष्ण उसे मूर्ति में
समाहित कर ही लेते हैं।
बिना महसूस किए
भी अंतर निहित होता है
अदृश्यमान रहकर भी
साहस बोता है।

फिर भी
मै अपनी और से
निर्वाह करती हूं
लो तुम कहते हो तो
चुप ही रहती हूं
मगर इसे
चुप्पी न समझना
प्रिय
क्योंकि मैं तुम्हारे भीतर भी
बोलती रहूंगी
अपने होने का
अहसास घोलती रहूंगी।

तुम्हारा मन

आज जीवन के
अंतिम पड़ाव पर
जब बहुत पास है मृत्यु
मुझे एक पल दिया ईश्वर ने
अपने सबसे
अजीज दोस्त से मिलने को
सब कुछ धूमिल था.....

एक अहसास सा
मुझे छू रहा था
मैंने पूछा ,कौन हो तुम?
उसने कहा
तुम्हारा' मन'
आज ये पल बस मेंरा
तुम्हारा है
सबसे दूर
बस खुद से बात
मुझ से ही बात करो
मैं पूछ बैठी उससे
तुम कैसे हो प्रिय?
उसने कहा
अब भी याद हु में तुम्हे?
मैंने कहा भूली कब
मन मुस्कुराया और कुछ न बोला
फिर मैंने उसके
मौन को पढा पहली बार
और मेरी आँखें भर आईं
आखिर वो ही था
जो मुझे समझता था
मगर मैं
दुनिया को समझने में ही
व्यस्त थी हर बार।
जब उसने मुझसे
मांगा थोड़ा
बस थोड़ा सा वक़्त

मुझे समाज की
परिवार की फिक्र हुई
वो चुप हो रहा
बस प्रतीक्षा की अनन्त
मुझे मेरी ही जरूरत है
ये समझता रहा
और मैं उलझी रही
और .....
जरूरतों को पूरी करने में
वो सिकुड़ता रहा

भीतर ही भीतर
मैं देख न सकी उसकी घुटन
सहला न सकी उसकी थकन
उसने कई बार
मुझे बात करनी चाही
किन्तु मुझे
अपने व्यवसाय की चिंता में
संलग्न देख
वो फिर मुस्काया
और चुप हो गया
बस एक पल के इंतजार में..

मैं सजाती रही
घर ,आँगन
अपना तन और जीवन
पर नही चुनी
एक भी घड़ी उस के लिए
क्यों वो मेंरा अपना
मेंरे ही भीतर
मेंरे ही लिए
तरसता रहा
और फिर भी
मेंरे साथ चलता रहा

सोचती हूं
प्रश्नों ,उलझनों और
ढेरो समस्याओ का
तोहफा ही उसे दिया मैंने
और उसने
एक प्यारे साथी की तरह
सब स्वीकार किया
बस एक पल की चाह में
आज भी आया हुँ मैं
तुम्हारा 'मन'
उसने मेरा
हाथ थामते हुए कहा
तुम्हे एक पल सुकून देने
तुमसे
तुम्ही को मिलाने रुका

काश ! इस एक पल को
मैंने कभी... कभी जिया होता
मैं क्यों भूलती रही उसी को
जो सिर्फ मेंरे खातिर धड़कता रहा
आज जब कोई साथ नही
बस वही मेंरे साथ है
मेंरा 'मन'

मनु

मनु बनी एक मिसाल
पुरुष वर्ग के पाले में
चढ़ बैठी अरि पर अपने
साहस भर कर भाले में।
बही श्वेद बूंदे तब
अंग्रेजो के माथे से
कृपाण धरे हाथो में चंडी
खड़ी देखी अखाड़े में।
चुनचुन मारे देशद्रोही तब
बनी सिंहनी रानी थी
आज भी गाई जाती रण में
जिसकी अमर कहानी थी ।
सांसो में भरे थी ज्वाला
ममता आँचल में दीवानी थी
खूब लड़ी थी मर्दानी
रक्तरंजित कहानी थी।

उसने हमको सिखलाया
स्वाभिमान की आन रहे
अपने मान की खातिर लड़ना
जब तक शरीर में जान रहे।
नही किसी के आगे रखना
कोमल अपनी काया को
पाना है तो सीखो अपने
कौशल ,प्रतिभा की माया को
महको चन्दन बनकर जग में
चहको ज्यूँ कोकिल काली
बात अस्मिता की खातिर
बन जाओ देवी काली
नही कोई भी लड़ पाया
जो लड़ाई तुम्हे निभानी थी
गोरवशैली तुम अतीत की
दीपशिखा दिवाली थी ।

मृत्यु भोज

हाँ बेटा!
मेरी मृत्यु पर तुम भी
एक मृत्यु भोज कराना।
सड़क पर कचरे से
भूख मिटाती गैय्या है न
उसे भर पेट हरा चारा खिलाना
फिर जी भर शीतल जल पिलाना
और देखो ! सड़क पर
जो आवारा घूमते श्वान दिखे
तो उन्हें भरपेट भोजन कराना
हाँ एक काम जरूर करना
सबसे पहले
अपने आसपास से
प्लास्टिक का कचरा हटाना
कोई जानवर
अपनी भूख में उसे न खा बैठे।
और हाँ बेटा!
वो जो चींटिया
और चिडीया है न
उनको चुग्गा अपने हाथों से
एक बार जरूर खिलाना
कोरे सकोरे में भरकर पानी
उनकी प्यास बुझाना
देखो मेंरे लाल!
दरवाजे पर आए
भूखे प्यासे को तृप्ति भर देना
और अगर कोई मजदूर दिखे
तो उसकी मजदूरी पूरी कर देना
उसके बच्चे भूखे न सोये
कोई अनाथ, गरीब बालक को
पेटभर जलेबी जरूर खिलाना
मुझे भी बहुत पसंद थी न जलेबी
और हाँ !
जो वहाँ से गुजरे कोई अबला
जिसकी गोद में दुधमुंहा बच्चा हो
उसे छटाँग भर ही सही
दूध जरूर पिलाना
बेटा, सुनो !
मुझे कफ़न भले न ओढ़ाना
तन ढांपने को कपड़ा देना
किसी गरीब का
हो सके कष्ट मिटाना।
बेटा!
मेरी मृत्यु पर तुम
एसा मृत्युभोज कराना ।

शिव बन जाओ तुम

मोमबत्ती जलाकर दो दिन
मौन मत हो जाओ तुम
मैं जल रही हु हर घर में
अब तो आवाज उठाओ तुम
बात अब नही बनेगी
खाली कोरी बातो से
बनकर सखा, द्रोपदी का
अबतो चीर बढाओ तुम
बहुत हो चुकी नारे बाजी
दिया कोई जलाओ तुम
कहि किसी नारी को अपनी
अस्मिता दिलवाओ तुम
थामो हाथ किसी बहना का
सिर्फ रखी ही न बन्धवाओ तुम
लड़ सके अपने हक की खतिर
पिता, शिक्षा ऐसी दिलाओ तुम
साहस भरो पत्नी में अपनी
उठा सर जीना सिखलाओ तुम
बात अब नही बनेगी
अनशन और प्रतिकारों से
बनकर राम सरीखे पालक
सीता-वनवास छुड़ाओ तुम
प्रचण्ड प्रलय रच दो शिवा हित
अब तो शिव बन जाओ तुम।

छज्जे

कभी हुआ करते थे घरों में छज्जे
जब बरसता था जोरो से
आसमान
तो बून्द बून्द टपकते थे छज्जे,..
हम उन पर उतर जाया करते थे
कभी
यू ही चुग्गा डालने, पतंग
कटकर गिरती थी थाम लेते थे छज्जे,..
वो चुपन्छुपाई खेलते वक़्त
नजाने कितनी बार उतरे हम
रंगीन पँखो का खजाना छुपाए रहते थे छज्जे,..
अब सुंदर डिजाइन होती है
घरों पर
इसलिए नही होते अब छज्जे।
बदल दिए है उपमान जरूरतों ने,...

बेशक
मगर आज भी
जब गाँव जाती हूं
और देखती हूं वो घर पुराना
डबडबाई आंखों से
पुकारते हैं छज्जे।

गुड़िया के बाल

टुनटुन टुनटुन
चुनिया, मुनिया आओ
टुनटुन टुनटुन
रामा, घिस्या आओ
मैं चला
गली-गली पुकारता

कोई एक कोई दो दो
पैसा लाओ, जल्दी दौड़ो
काकी,दादी से कह आओ
मीठी मीठी गुली गुली सी
मुँह में जैसे घुली घुली सी
ये प्यारी सी
मिठाई ले जाओ

तभी
सहसा मेंरा कुर्ता पकड़ के
पूछा एक छोटी सी बच्ची ने
ये क्या है काका ?
गोल गोल आँखों में
उतर आई हो जैसे
सारी धरती की गोलाई
बेटा जी ये है मिठाई

तुम्हे चाहिए
उसने अपनी
छोटी सी मुठ्ठी
खोल के दिखाई
एक प्यारा सी
कांच की गोली
और वो मुस्काके भोलेपन से बोली
काका मेंरे पास तो बस यही है

मैंने उसे गोद उठाया
ये तुम्हारी जैसे
प्यारी प्यारी
मेरी गुड़िया है न उसके बाल है।
ये तुम लेलो
और ये कांच की गोली
मुझे देदो
वो खुश हुई और दौड़ गयी।

मैं क्यों न बदली

युग बदला
युग बोध बदला
मैं क्यों नही खुद को
बदल पाती हूँ?
पुरानी ,गन्ध मारती
धरणाओं से क्यों
निकल नही पाती हूँ?
ताज़ा ,गर्म खाना
घर -भर को खिलाती हूँ।
और खुद रात के गुंथे आटे की
रोटियां खाती हूँ।
यहाँ तक कि
सब्जी भी बच्चो की ही
पसन्द से बनाती हूँ।
और कपड़े पति की
पसन्द के लाती हूँ।
मेंरा अपना कहा जा सके
एसा मुझमें क्या है?
पोशाक तो बदली
देहरी लाँघ बाहर भी निकली
अपनी ही परिधियों से क्यों
नही निकल पाती हूँ।
घर परिवार ,रिश्ते सम्बन्ध
सब ही कुछ तो पूर्ण यत्न से
ताउम्र निभाती हूँ।
खुद के व्यक्तित्व को क्यों
नजरअंदाज कर जाती हूँ?
आखिर कौन मिलाएगा मुझे?
मेंरे ही भीतर की स्त्री से
विशेष हूँ मै भी।
अवशेष नही.....
तभी तो चुना है ईश्वर ने मुझे
सृष्टि की सर्जना का जरिया।
रचती हूँ
नई पीढ़ी
नया संसार
अपने ही अंश से
उसे जीवित भी बनाती हूँ।
मगर अपने भीतर भी
क्या कुछ रच पाती हूँ????

आज़ादी के दीवानों में

आज़ादी के दीवानों में एक नाम मेंरा भी, तुम लिख दो।
राष्ट्रहित जीवन समर्पित अविराम मेंरा भी, तुम लिख दो।

लिख दो की साँसों की माला
गुँथ जाए माँ के बंधन
गिरे एक ,सो फिर उठ जाए
हो सीमा पे जब अरिमर्दन।
चीख चीख के लहू सुनाए
गाथा प्रताप ,शिवाजी की
कैसे क्योंकर भूली जाए
बलि आज़ाद, सावरकर की
नित नित गाये शस्य श्यामला
कोटि कोटि कंठो से वंदन।
आर्य राष्ट्र के मतवालों में
एक नाम मेंरा भी ,तुम लिख दो।

प्राण रहे जब तक तन में
राष्ट्रभक्ति ही बहती हो
फिर नाम कलंकित हो कैसे ?
भारत माँ,जिस मन में रहती हो।
उठो ,उठो !फिर विश्व गुरु का
मान तुम्हे बुलाता है।
जन ,गण ,मन है!अधिनायक
देश-सम्मान तुम्हे बुलाता है।
भर चिंगारी जब आजादी की
फेंकी थी ज्वाला ,कापुरुषो पर
फिर आज मूक क्यों हुई वाणी
गरजो! एक धरा गगन लिख दो।

आज़ादी के दीवानों में एक नाम मेंरा भी, तुम लिख दो।

एक मुलाकात हमदम के साथ

एक दिन जब निपटा लिए
सारे जरूरी काम
तो अकेले बैठी कुछ देर निठल्ली
तभी अचानक सुनी
जानी पहचानी सी आवाज़
लगा ये....
ये अभी भी जिंदा है?
धड़क रहा है
हाथ लगा कर महसूस किया
हाँ, सचमुच ये स्पंदित है
मेंरे हाथ का स्पर्श पाकर
वो और भी तेज़ धड़कने लगा।
जैसे माँ के स्पर्श से
उदास बालक उमग उठता है।

मैंने अपनी उत्सुकता
को छिपाते हुए ,पूछा
जिसकी में अभ्यस्त थी।
कैसे हो ? मेंरे हमदम
ये सुनकर वो जैसे बिलख ही उठा
यू बोला ,मेरी याद रही तुमको
मुझे ग्लानि हुई
हा!क्यों अनजान रही
अपने ही मन से
जो हर पल मुझे खुश देखने
भर को ही जीता रहा।
वो फिर कुछ न बोला
शायद आदी हो चुका था मौन का
मगर में समझ गयी
उसकी अनकही बात आज
क्योंकि आज मुझे फुर्सत जो थी
जैसे कह रहा है
उपेक्षा ने तुम्हारे
धीरे धीरे मुझे चुप कर दिया
लेकिन जब कभी तुम उदास हुई
रोई, दुखी हुई।
मैं भी तुम्हारे भीतर रोया।
तुम्हे आस बंधाता रहा।
और खुद....
अपनी आस को जिलाने
मुस्कुराता रहा।

उस दिन मुझे महसूस हुआ
हमें मंजूर है दिल का दौरा
क्योंकि दिल बेचारा हमारी
फुर्सत को तरसता है
हम उसका दौरा कभी,
कभी तो कर ले ।

ओ मोरे कन्हैया

ओ मोरे कन्हैया
वसुंधरा तुमको पुकारे
फिर आओ इस बार।
मिटाओ अधर्म धरा का
रचो नया संसार।

हे कृष्ण! तुमने कहा था
जब जब होगी धर्म की हानि
तुम आओगे
सुजनों का मान बचाओगे।
एक द्रोपदी का चीर बढ़ाने
तुमने मचाया घमासान।
नित नित लुटती अब बालाएं
क्यों न बचाते उनका मान।

देखो, किया हरण कालिया का
बचाये जल जीवन और धान
देखो, यमुना गदली हुई
गइया होरही निष्प्राण
कोयल, पपीहा
अप्रवासी होगए
बदल गया इंसान।
हे कान्हा! रखो धरा का मान।

देखो,
तुम्ही ने सत्य ,धर्म ,मूल्यों का
फहराया जग में उत्तुंग वितान
भ्रष्टाचार, बलात्कार
बढ़ रहा धरती पर भार
उठाओ फिर गोवर्धन बचाओ
डूबती मानवता का प्राण।

हे माधव!
आज फिर है
प्रासंगिकता ,जन्म की
बढ़ रहा अधर्म का ज्वार
द्वेष ,दिखावा और स्वार्थ से
जर्जर प्रीत, प्रेम और प्यार
आओ आओ फिर से कान्हा
काटो वसुधा का बंधन
पुण्य भूमि पर प्रेम का
रचो नया संसार।

अतिक्रमण

शहर के बीच
जब एक बस्ती पर बुलडोजर चलता है
सरकारी नाम दिया जाता है
शहर का सौंदर्यीकरण
मगर एक सच
यह भी कि इसकी कीमत
उन बेसहारा लोगो के
सपनो ,गांठ की कमाई
शायद बच्चो की मजदूरी
महिलाओ की झाड़ू पोंछे के
गाढ़े पसीने और नजाने
कितने दिन तक टका टका जोड़ कर
ईंट ईंट चुनकर बनाये गए
तथाकथित घर को तोड़ कर किया जाने वाला
ये शहर की सुंदरता का प्रयास,
सरकारी वोट बैंक का बड़ा मुद्दा
क्या वास्तव में विकास है।
बेघर को घर देने का वादा एक तरफ
और दूसरी तरफ
ये राक्षस बुलडोजर
मजदूरों के गले रेतकर
बिल्डिंग्स के सुंदर शिखर
मॉल सजाकर

उनकी तकलीफों की मज़ार पर सजाया शहर
ये सौंदर्यीकरण
सच में अतिक्रमण होते समय
सबकी चुप्पी वोट मिलने तक
फिर उठापटक
नाम दिया अतिक्रमण हटाओ
अतिक्रमण कौन कर रहा है?
नियमो की आड़ में
उनका तोड़ निकालने वाले
या बेसहारा, मजदूर
कहने को तो ये जुमला भी
कि उन्हें कही और बसाया जाएगा
मगर आजीविका ????
बरसो बाद भी आजादी के
लाखो लोग बेघर, बेकाम
माफ़ कीजिये
बुलडोजर जमीन पर नही
पेट पर चल रहा है।
अतिक्रमण जमीन से नही
जीने के अधिकार से हटाया जा रहा है।
क्या कोई सम्वेदनशील सरकार
अतिक्रमण होने से लेकर हटाने तक
सालों साल तमाशबीन रहकर
फिर अचानक सौन्दर्यीकरण के नाम पर
यू मानवता का रक्त बहायेगी?

प्रियदर्शी

सुनो प्रियदर्शी!
नवयौवना सा नही लावण्य शेष
आकर्षण, अतुल्य फिरभी विशेष।
उपमान दिखे ,सभी धुंधलके
मुख की आभा है नवोन्मेष।
नयनो में अविरल तरलता
देखू जब ,क्यों मदमाता हूँ।
साधारण सा रूप तुम्हारा
नयनो में समो नही पाता हूँ।
मोह में अहर्निश ,रूपसी!तेरे
जाने क्यों बंधता जाता हूँ?

बिन बात की बात तुम्हारी
खिलखिल जाना,मुस्काना।
ताकते रहना छिप छिप
नजरे मिलते ही शर्माना।
क्षणिक रूठना ,मन जाना
ज्यूँ धर रूप सरलता का आना।
न ही कहती अभिलाषा हो
न कोई इसरार तुम्हे।
कैसे कहूँ हे प्रियवदना!
कितना करता प्यार तुम्हे।
मीठी बातो में भोले भाले
प्रश्न समझ नही पता हूँ।
मोह में अहर्निश रूपसी !तेरे
जाने क्यों बंधता जाता हूँ?

मन में हाँ ,होठो से किन्तु
होले से मुकर जाना।
तुम्ही बोलो,भूलू कैसे ?
मन में तुम्हारा बस जाना।
शीतल रश्मि विसरित होती
जब तू निश्छल मुस्काये ।
पूनम चंद्रिका ज्यूँ छलके
चंचल सरिता सी लहराये।
जीवन भरती हो कविता सी
प्रीत हिलोरे भरती जब
मैं गीत सृजन कर पाता हूँ ।
मोह में अहर्निश ,रूपसी! तेरे
जाने क्यों बंधता जाता हूँ?

संयोग?

तुमसे मिलना साथी
कुछ ऐसा था
जैसे लम्बे सफर की थकान हो
और कोई शीतल छाँव दिख जाए
हाँ कुछ एसी ही लगती थी
तुम्हारी बातें मानो
बरसो से प्यासे मन पर
सावन बरस रहा हो रिमझिम
वो क्षण भर का साथ तुम्हारा
यू लगता था ज्यूँ
उनीदी आँखों में
प्यारा सा सपना
कोई चुपके से रखकर
मुस्कुरा रहा हो
वो सब कुछ
कहो भुलाया जा सकता है?
डाली से टूट गया हो जो
फूल मन का
उसे फिर वही खिलाया
जा सकता है?
नही न
जानती हूँ
बहुत मुश्किल होता है
देखे हुए सपने को
फिर से बार बार देखना
सच कहूं
जब कोई रिश्ता बनता है
तो बंध जाती है कई उम्मीदे
जुड़ जाता है एक विश्वास
कहते हैं कि कायनात में
कुछ भी बिना वजह नही
फिर.....
हमारा मिलना क्या संयोग था?

रक्तबीज

रक्तबीज का हरण करो, माँ दुर्गे अरि पर चरण धरो।
आओ, छवि में उतरो, माँ हर नारी का वरण करो।

जब देव शक्ति अशक्त हुई
तुमने महिषासुर नाश किया।
फिर सतीत्व की खातिर माँ
सीता ,राधा का रूप लिया।
या तो भरदो शक्ति ,दर्प
या फिर स्त्रीत्व समूल हरो।
रक्तबीज..का हरण करो
माँ दुर्गे अरि पर चरण धरो।1।

क्यों आज गली चौराहे पर
रावण सीता को हरते हैं
क्यों अबअपने ही घर में
सब कन्या जन्म से डरते हैं।
हे श्री ,शारदा, शक्ति! तुम
अपने नाम की लाज धरो।
रक्तबीज का हरण करो।
माँ दुर्गे अरि पर चरण धरो।2।

आशा तुम से विजया की ये
नारी न भूले वो है विशेष।
अखिल सृष्टि की रचना का
रहे उसमें अभिमान शेष।
माँ, बेटी, सखी या वनिता
परिणीता का उसमें तेज भरो।
रक्तबीज का हरण करो
माँ दुर्गे अरि पर चरण धरो।3।

क्यों भाजन बने नारी
कापुरुष के कामुक तन का।
संकल्प शक्ति का उठा अस्त्र
मारे रावण अपने मन का।
भूली क्यों झांसी की रानी
स्वाभिमान, स्वविवेक भरो।
रक्तबीज का हरण करो..
माँ दुर्गे अरि पर चरण धरो।

वो जनरल बोगी

सुना है
बहुत आसान नही होता
सफ़र जनरल बोगी में।
चीखते रोते बच्चे
पसीने की गंध मारते लोग
बैठने या खड़े होने भर की
जगह पाने को होती धक्का मुक्की
और पूरा असभ्य माहौल
शायद कोई सफेदपोश
सफ़र करना चाहे इसमे
मगर एक अद्भुत सच
जो महसूस किया मेने
यहाँ जो कुछ है जैसा है
बस वैसा ही दिखता है
सब कुछ सच ,सादा ,सरल
बच्चो का रोना भी
पसीने की गंध भी
बैठने की जद्दोजहद भी
सफेदपोश जिंदगी में
ये सब नही है,...
इसलिए वहाँ
तनाव है, घुटन है, आत्महत्या है
सब कुछ छुपा हुआ है
बच्चो का रोना खिलोनो के पीछे
मेहनत की गंध एयरकंडीशनर घरों
में
जद्दोजहद तो है ही नही
सुविधाओ की घुट्टी
बचपन से ही पिलाई जाती है।
दिखावा है, छिपाव है।
जहां जैसा है उसे
स्वीकृत करना
अपनाना ही तो
सभ्यता है ,प्रकृति से प्रेम है।
आखिर वो भी हमें यही तो सिखा
रही है।
मैं स्वयं से पूछ रही हूँ
की इसे असभ्यता कहने वाले हम
आखिर कितने सभ्य हैं??

नही कन्या भ्रूण गिराउंगी

मेरे अनगढ़ सपनो को माँ
तुमने ही आकार दिया।
जन्मा मुझे कोख से अपनी
अतुल्य ये उपकार किया।

हाँ !
देख रही थी मैं भी गर्भ से
क्या क्या तुम सब सहती थी
चुप रहकर बस आस में मेरी
माँ तुम जीती रहती थी।
तेरे मन की घुटन की जाँच
मुझ तक भी पहुंचती थी
जब सहलाती मुझे गर्भ में
तेरी आस महकती थी।
सुना था मेने भी अट्टहास वो
जो मुझे मारने आतुर था
सारा समाज तुझ पर माँ
कलंक लगाने आतुर था।
बेटी जनकर कुलकलंकनी
तुझे जब ठहराया था।
लेकिन मुझमे तूने तब भी
स्वाभिमान जगाया था।
कितने दर्प से चमका था चेहरा
जब तूने मुझे गोद उठाया था।
पग पग पर तूने ही मुझमे
जीने का दृढ़विश्वास जगाया था।
लड़ी अकेले खड़ी अकेले
मेरी खातिर तुम्ही माँ।

हाँ !
देखा था मेने बचपन मे
तुमने जो कष्ट उठाये थे।
मुझे पढाने की खातिर
माथे पर बोझ उठाये थे।
सीख रही थी मैं भी चुपचुप
अपनी आन निभाना माँ।
अपनी बेटी के ख़ातिर
रूढ़ियों से टकराना माँ।
है तुझसे वादा मेरा माँ
तेरी रीत निभाऊंगी।
जन्मे कोख से मेरे बिटिया
उसे तेरी तरह बनाउंगी।
लीक नई जो तुझसे सीखी
सुता जननी बनकर के
वही रीत दोहराउंगी ।
लाख कहे दुनिया तो क्या
नही कन्या भ्रूण गिराउंगी ।
कोई न दे साथ तो क्या
उसे शिक्षित बनाउंगी
लाख सवाल उठे तो क्या
हर रूढ़ि से टकराउंगी।
नही कन्या भ्रूण गिराउंगी।

बातें वो पहले सी

यादों का एक झरोखा था
हम तुम जब बैठा करते थे
कोयल तब कूका करती थी
सावन भी बरसा करते थे
मीठी मीठी सी उलझन तब
रिश्तों में जैसे तुरपन थी
कुछ हम कहते कुछ सुनते थे
कितनी प्यारी वो बातें थी
आँगन में तुलसी महुआ था
द्वारे पर प्याऊ सजती थी
पकवान भले ही थोड़े थे
पर मनुहारों की पंगत थी
सब सुख दुख बांटा करते थे
आँटा और सांटा करते थे
गलिया भले ही छोटी थी
दिलो में दूरी न होती थी
बोली में मिसरी घुलती थी
पानी मे दमखम होता था
एक घर का मेहमा तब तो
पूरे गांव का मेहमा होता था
पैसा भले ही कम था पर
अपने पन की पूँजी थी
तारो की झीनी चादर ताने
माँ की गोदी बिस्तर थी
अब गाँव बदल गए शहरों में
विश्वास बदल गया पहरों में
कुँए का जल भी सुख गया
प्रीत का झरना छूट गया
मिट सी गयी अब बाते वो
घर भी सराय लगते हैं
चार दिवारी के भीतर कैद
अपने,पराये लगते हैं।

कुछ साँसों का हिसाब

लगाया जब जनाब
तो अपने हिस्से की
गिनती निकली कितनी
कुछ भागदौड़ में दौड़ी
कुछ आराम में कटी
कुछ चिंता में चिता हुई
कुछ जलन में जली
कुछ गिरी दुसरो को गिराने में
कुछ उठी अभिमान उठाने में
कुछ मिटी दुसरो को मिटाने में
कुछ जिनका हिसाब नही
बस जोड़ तोड़ में निपटी
कुछ जो रुकी रही
कुछ और अभिलाषाओं ने
चिपटी रही
कुछ को उधेड़ते रहे हम
कमियां उधड़ते उधेडते
कुछ सिलती रही
उम्मीद सिलते सिलते।
कुछ जो अब बच गयी है
वो इस इंतजार में कट रही है
की शायद कोई चमत्कार हो
और कुछ साँसे और मिल जाये।
मगर ये अब समझ आया कि
गिनती की साँसे मिली थी
महोबत्त करने को
वो तो की ही नही।

व्यक्तित्व दर्पण

नाम - विजयलक्ष्मी जांगिड़ 'विजया'

जन्म - 20 दिसम्बर 1980

शिक्षा - स्नातकोत्तर (हिन्दी)

पता - 112/176 थड़ी मार्केट, मानसरोवर जयपुर (राजस्थान)

मो. - 9694091536

ई मेल - Vijayajangid1980@gmail.com

प्रकाशन - केनवास पर बिखरे रंग (काव्य संग्रह)- जवाहर कला केन्द्र द्वारा प्रकाशित। आखिर कितनी अनामिकायें (काव्य संग्रह) - राजस्थान साहित्य अकादमी से प्रकाशित। 'शब्द मुखर हैं' (सांझा काव्य संग्रह), नारी काव्य सागर (सांझा काव्य संग्रह), प्रेम काव्य सागर (काव्य संग्रह), सुमधुर काव्य संग्रह, सहोदरी सोपान (सांझा काव्य संग्रह), मातृ भाषा काव्य संग्रह, अणुव्रत न्यास संस्थान द्वारा शिक्षाक की कलम से विगत चार सत्रों से कहानीयॉ प्रकाशित, 'मै हूँ न' को राष्ट्रीय स्तर पर तृतीय पुरस्कार।

सम्मान - काव्य श्री सम्मान, नारी काव्य सागर सम्मान, प्रेम काव्य सागर सम्मान, प्रेम काव्य सागर सम्मान, इंडियन विमन त्रिबलाइज़ अवार्ड, इंडिया आइडल आवर्ड, भाषा सारथी सम्मान, भाषा सहोदरी सम्मान, काव्यचल सम्मान, इफेक्टिव टीचर अवार्ड, सावित्री बाई फुले गौरव एवं अनेकों सम्मान।

यदि आप अंग्रेजी में हस्ताक्षर करते हैं तो निवेदन है कि 'हिन्दी में हस्ताक्षर करें', आपकी यह छोटी-सी कोशिश हिन्दी को राजभाषा से राष्ट्रभाषा बनाने में अमूल्य योगदान देगी ।

अन्तरा शब्दशक्ति
www.antrashabdshakti.com

१५, नेहरु चौक, मेन रोड वारासिवनी,
जि. बालाघाट (म.प्र.) पिन ४८१३३१,
संपर्क- ९४२४७६५२५९,
अणुडाक: antrashabdshakti@gmail.com

978-93-86666-21-5

मूल्य- 55/-